वेद में यज्ञ का
स्वरूप
ओ३म्
यज्ञ का स्वरूप
डॉ. सुनी
एम. ए. पीएच. डी.
क्रान्तिदूत प्रकाशन

— समर्पण

वैदिक यज्ञ के पुनरुद्धारक. महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

जिस महर्षि की तेजस्विता ने युग के तमस् को झकझोर कर फिर से भूतल पर वेदों का प्रकाश फैला दिया और परम श्रेष्ठतम कर्म के रूप में यज्ञ की वैदिक परंपरा को पुनरुज्जीवित कर दिया। उन्हीं के पावन विचार पुष्प उन्हीं को सश्रद्ध समर्पित।

ओ३म्

वेद में यज्ञ का स्वरूप

डॉ. सुनीति
एम्. ए. पीएच्. डी.

क्रान्तिदूत प्रकाशन

पृष्ठ भूमी

महर्षि दयानन्द धर्मार्थ प्रतिष्ठान प्रतिमास के प्रथम रविवार को वेद गोष्ठी का आयोजन करता है। इसी संदर्भ में 4 अक्टूबर 79 के दिन हैदराबाद नगर में आयोजित वेद गोष्ठी में आर्य जगत् की सुप्रसिद्ध विदुषी बहन डॉ. सुनीति एम्. ए. पीएच्. डी. का "वेद में यज्ञ का स्वरूप" विषय पर निबन्ध पढ़ा गया।

डॉ. सुनीति ने अपने निबन्ध को आरंभ करते हुए कहा कि – इस निबन्ध की आत्मा महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेद भाष्य से ली गई है और शारीरिक कलेवर पं. रघुनन्दन शर्मा की वैदिक संपत्ति से संकलित है। मैंने केवल संयोजन का कार्य किया है।

आपके यह भाव जहाँ आपकी विनयशीलता के परिचायक हैं, वहाँ यह निबन्ध आपकी अपनी विद्वत्ता, योग्यता व स्वाध्याय शीलता का स्पष्ट परिचायक है। डॉ. सुनीति हैदराबाद के आर्य नेता स्व. भाई बंशीलाल जी वकील हायकोर्ट की द्वितीय सुपुत्री हैं। अतः परम्परागत आर्य संस्कारों में पली तथा ज्ञान सरिता की सहज ही स्नातिका हैं।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय के प्रवक्ता वैदिक विद्वान् श्री बी. एन. चौबे ने की। माननीय चौबे ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए डॉ. सुनीति के इस प्रबन्ध की जहाँ भूरि - भूरि प्रशंसा की वहाँ इस प्रबन्ध को प्रकाशित कर आर्य जगत् के हाथों में पहुँचाने की आवश्यकता पर बल दिया। परिणाम स्वरूप यह पुस्तिका आपके हाथों में है।

आज जब की संसार जलवायु प्रदूषण से आशंकित है और यज्ञ के महत्व से अनभिज्ञ। ऐसी स्थिति में यज्ञ के स्पष्ट स्वरूप को सुयोग्या बहन ने बड़ी उत्तमता से प्रस्तुत किया है। इस प्रबन्ध को पढ़कर बुद्धिजीवी वर्ग यज्ञ के प्रति आकृष्ट होगा और जन समाज में यज्ञ के प्रति श्रद्धा जागृत होगी इस उद्देश्य से यह प्रबन्ध सुविज्ञ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। आशा है यज्ञ के प्रति आस्थावान् और अनास्थावान् दोनों ही प्रकार के बन्धु इस पुस्तिका से लाभान्वित होगें। इस विश्वास के साथ –

डॉ. रमेश चन्द्र भटनागर
संयोजक
वेद गोष्ठी
महर्षि दयानन्द धर्मार्थ प्रतिष्ठान

दीपावली 1979
हैदराबाद.

ओ३म्

वेद में यज्ञ का स्वरूप

यज्ञ और योग, वैदिक संस्कृति के दो ऐसे स्वर्णिम पथ हैं जिसे सम्यक्तया जान कर मनुष्य समाज, अभ्युदय अर्थात् सांसारिक और निश्रेयस् अर्थात् पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को, प्राप्त कर सकता है। किन्तु दुर्भाग्य वश वहुत सी भ्रान्तियां, यज्ञ और योग के क्षेत्र में फैली हुई हैं, जिन के कारण, इन के सत्य स्वरूप को समझना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि - आन्तरिक पवित्रता के माध्यम से, परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर लेना योग है और बाह्य पवित्रता का निर्माण कर, ईश्वर प्रदत्त वस्तुओं का सम्यक् विनियोग, 'वहुजन हिताय, वहुजन सुखाय' करना यज्ञ है। स्वयं परमात्मा यज्ञ स्वरूप हैं इसीलिए वेद में कहा गया है—'तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत:' उस यज्ञ रूप प्रभु ने यह संपूर्ण सृष्टि अपने लिए नहीं, जीवों के लिए रची है। उस प्रभु की वनाई सृष्टि के रहस्यों को जान कर 'इदं न मम' की भावना को आत्मसात् करना यज्ञ की मूल आत्मा है। 'स्वाहा' अर्थात् सब की भलाई के लिए अपना और अपने स्वार्थ का उत्सर्ग करना यज्ञ का प्राण है और सुगन्धिकारक, पुष्टिप्रद, आरोग्य वर्धक घी, सामग्री, मिष्टादि पदार्थ जो साधन रूप हैं वे इस यज्ञ के बाह्य स्वरूप अर्थात् शरीर मात्र हैं।

हमारा ऐसा कार्य जो अधिक से अधिक जड़ और चेतन दोनों को समान रूप से लाभ पहुंचा सके, वह विशेष क्रिया है, जिसे ऋषि मुनियों द्वारा किया गया, बहुत बड़ा, वैदिक आविष्कार माना जाना

चाहिए। यह अद्‌भुत आविष्कार, आज भी विज्ञान के बड़े बड़े लाभप्रद आविष्कारों के सन्मुख एक चुनौती के रूप में अपने विशाल महत्व को लिए प्रस्तुत है। असाधारण रूप से सम्पूर्ण चराचर जगत् को युगपत् प्रभावित करने वाले इस आविष्कार की तुलना में तथाकथित महान् आविष्कार बौने से दिखाई पड़ते हैं। यज्ञ के इस अद्‌भुत प्रभावकारी स्वरूप का विवेचन वेद के आधार पर करना इस निबंध का प्रतिपाद्य है। यज्ञ शब्द का अर्थ क्या है? उसकी कृति अर्थात् क्रिया कलाप किस प्रकार सम्पन्न होते हैं? यज्ञ के साधन कौन-कौन से हैं? और इस यज्ञ का फल किस - किस रूप में प्राप्त होता है? इन सभी प्रश्नों पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

यज्ञ शब्द का अर्थ

यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ होते हैं—देवपूजा, संगतिकरण और दान। ऋषि दयानन्द के शब्दों में - देव पद का मूल अर्थ द्योतक अर्थात् प्रकाश स्वरूप है। वेद मंत्रों की भी देव संज्ञा है, क्योंकि उसके कारण विद्याओं का द्योतन अर्थात् प्रकाश होता है। देव शब्द का अर्थ परमात्मा भी है, क्योंकि उसने वेद का अर्थात् ज्ञान का और सूर्यादि जड़ पदार्थों का प्रकाश किया है। देव का अर्थ विद्वान् भी होता है। शतपथ ब्राह्मण में 'विद्वांसो हि देवाः।' ऐसा कहा गया है। पूजा शब्द का अर्थ सत्कार होता है। देवपूजा अर्थात् परमात्मा का सत्कार। वेद मंत्र के पठन से परमात्मा का सत्कार होता है। इसी तरह यज्ञ शाला को भी देवायतन या देवालय कहा गया है।

'तस्मात् सर्वं गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। – गीता

संगतिकरण अर्थात् अत्यन्त प्रीतिपूर्वक, प्रेम पूर्वक, देवता का ध्यान, देवता का विचार, सत्पुरुषों का संग, शिल्प विद्या का प्रत्यक्षीकरण इसे भी यज्ञ कहते हैं।

तीसरा दान-विद्यादान को छोड़कर दूसरे दान, दान नहीं हैं। अन्न वस्त्रादिकों के दान विद्यादान की सहायता करते हैं इसलिए उन्हें दान कहना उचित है। 'सर्वेषामेव दानानाम् ब्रह्मदानं विशिष्यते" सब दानों में ज्ञानदान ही विशिष्ट है। इस प्रकार यह यज्ञ कर्मकाण्ड का विषय है। यज्ञ में अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त का समावेश होता है।

यज्ञ के इस अर्थ को सरलता से समझने के लिए इसे इन शब्दों में भी स्पष्ट किया जा सकता है— "अपने से जो बड़े हैं वे देव समान हैं, उनकी पूजा करना यज्ञ है। बराबर वालों के साथ संगति करना और छोटों को कुछ देना भी यज्ञ है। यह छोटाई बड़ाई केवल मनुष्यों में ही नहीं, प्रत्युत् संसार का चाहे जो पदार्थ हो, चाहे जो शक्ति हो और चाहे जो गुण हो, यदि वह बड़ा है तो पूजनीय है। यदि बराबर वाला है तो मिलने योग्य है, यदि छोटा है, तो कुछ पाने का अधिकारी है।"

–वैदिक सम्पत्ति

इस प्रकार से समस्त जड़ चेतन जगत् को परस्पर एक दूसरे से लाभ पहुँचाना ही यज्ञ है। 'यज्ञो वै विष्णुः' कह कर, यज्ञ का विराट् एवं व्यापक रूप वैदिक वाङ्मय में भी विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। यज्ञ का इतने व्यापक रूप से अर्थ करने पर साधारण जन कभी कभी सन्देह में पड़ जाते हैं। परन्तु हमें इस बात को सम्यक्तया समझ लेना चाहिए कि यज्ञ एक ऐसी क्रिया विशेष का नाम है, जिस में ऋषि मुनियों ने एक ही साथ देव पूजा, संगतिकरण और दान तीनों प्रकार के क्रिया विधान को संयुक्त कर दिया है। इस अनोखे संगम के कारण ही यज्ञ का रूढ़ि-अर्थ काष्ठ में घृतादि सुगंधित पदार्थों का जलाना प्रसिद्ध हो गया है।

जिस प्रकार लोक में उदाहरण दिया जाता है कि यह संसार एक पाठशाला है। जिसमें मनुष्य अपने अनुभव से बहुत कुछ सीख लेता

है। तो इसका कदाचित् यह अभिप्राय नहीं कि अब बालकों को पाठशाला भेजना आवश्यक नहीं। हम समझ लें कि बालक इस संसार रूपी पाठशाला से ही सब कुछ सीख लेगा। यह एक उपमान ही है।

इसी प्रकार जीवन में परोपकार करना भी यज्ञ है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम असली यज्ञ क्रिया को न जानें, न करें। उस यज्ञ के निज स्वरूप की अपनी ही महत्ता है। यज्ञ के इस महान् स्वरूप का दिग्दर्शन यजुर्वेद के माध्यम से सहज ही हो जाता है। यजुर्वेद में मुख्य रूप से यज्ञ के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। यजुर्वेद शब्द में भी यज् धातु ही प्रयुक्त हुई है। "ऋग्भिः स्तुवन्ति यजुभिर्यजन्ति" इसका अभिप्राय यही है कि ऋग्वेद में सृष्टि के पदार्थों का Theorical सैद्धान्तिक ज्ञान दिया है और यजुर्वेद में Practical उसकी प्रायोगिक विधि समझाई गई है। सृष्टि के जड़ चेतन पदार्थों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर उससे यथोचित उपकार लेना ही मानव के कर्मों की सार्थकता है। यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में ही 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' कह कर मानव समाज को यज्ञ रूप कर्म करने का संकेत दिया है। शतपथ ब्राह्मण जो वेद मंत्रों के व्याख्यान हैं—उसमें इस मंत्र की व्याख्या करते हुए स्पष्ट कहा गया है—यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्मः। इस श्रेष्ठतम कर्म को जानो, समझो और करो। ज्ञान की सफलता कर्म में ही परिलक्षित होती है। सृष्टि के पदार्थ विशेष का उपभोग करना तो पशु-पक्षी भी जानते हैं, सब के लाभ के लिए इन पदार्थों का विनिमय करना ही मानव की विशिष्टता है।

यज्ञ की कृति

यज्ञ की इस प्रायोगिक विधि को यजुर्वेद के दूसरे मंत्र से प्रारंभ कर कई मंत्रों में समझाया गया है। सृष्टि के पंच महाभूतों में वायु और जल हमारे प्राणाधार हैं। इन अमूल्य वस्तुओं के बिगड़ने से ही नाना प्रकार की व्याधियाँ मानव समाज को दुःख सागर में धकेलती हैं। हम

अपने क्रिया कलापों से निरंतर इन्हें अशुद्ध करते रहते हैं। रोगों से बचने के लिए वैज्ञानिक नई-नई औषधियों का आविष्कार करते हैं और परोपकारी मनुष्य समाज, नए-नए अस्पतालों का निर्माण कर, जन सेवा की भावना से दुखियों के दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करता रहता है। परन्तु इन दोनों का संयुक्त कार्य हम यज्ञ के माध्यम से संपन्न कर सकते हैं। 'हेयं दुःखं अनागतम्' Prevention is better than cure चिकित्सा से सावधानी उत्तम है। यही बात हमारे ऋषि मुनियों की बुद्धिमत्ता की परिचायक है। इसीलिए उन्होंने वेद की इस आज्ञा को क्रियात्मिक रूप से परिपालन करने के लिए यज्ञ का दैनिक विधान आवश्यक बताया था। वेद के माध्यम से प्रभु हमें स्पष्ट आदेश देते हैं कि सृष्टि को पवित्र रखने का उत्तरदायित्व, मानव समाज पर है। यद्यपि प्रकृति में स्वाभाविक रूप से होने वाली अशुचिता का शोधन सूर्य के माध्यम से निरन्तर होता रहता है किन्तु हमारे द्वारा विशेष रूप से फैलाई जाने वाली अशुचिता को पवित्र करने का दायित्व हम पर ही आता है। वायु और जल भी पवित्रता के लिए ही हैं। वे हमें पवित्र करते हैं, हम उन्हें पवित्र करें यही देव पूजा कहाती है। इसीलिए गीता में कहा है –

देवान्भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। 3/11

इस यज्ञ के द्वारा तुम लोग इन्द्रादि देवताओं को हवि आदि के दान द्वारा सन्तुष्ट करो और वे देववृन्द वृष्टि आदि के द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट करें। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को पवित्र करते हुए तुम लोग वाञ्छित फल को प्राप्त करो। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का दूसरा मंत्र इस प्रकार है –

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृंहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपति ह्वार्षीत्।

यज्ञों वै वसु—शतपथ। यज्ञ—पृथ्वी, आकाश, द्युलोक तीनों लोकों को पवित्र करने का हेतु है। यज्ञ से पवित्रता, प्रकाश, रक्षा इस लोक और पर लोक के सुख की प्राप्ति, परस्पर सरलता से व्यवहार, कुटिलता का त्याग होता है। इस यज्ञ का 'मा ह्वाः' मत त्याग कर। इस यज्ञ का स्वामी-यज्ञपति - बन। मा ह्वार्षीत्—इस पवित्र यज्ञ को कभी मत छोड़ो।

हम प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक नाना रूपों में मल एवं दुर्गन्ध का प्रसारण करते हैं अतः आवश्यक है कि—हम नियमित रूप से इसके निवारण का प्रयत्न भी नित्य किया करें। मध्य कालीन युग में यज्ञ की विस्मृत एवं विकृत विधि को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुनः वेदानुकूल बना कर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इस विधि विधान को प्रत्येक व्यक्ति के लिए नित्य करने योग्य बतलाया। उन्होंने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद के विषयों पर विचार करते हुए स्पष्ट लिखा कि—"ईश्वर ने मनुष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी है, इस को जो नहीं करता वह भी पापी होके दुःख का भागी होता है" आज के वैज्ञानिकों के लिए वायु प्रदूषण ने एक भयंकर समस्या का रूप धारण कर लिया है। वायु में निरन्तर ऑक्सीजन की कमी से वे चिन्तित हो उठे हैं। देर सबेर वे इस वैदिक अनुसंधान की ओर प्रवृत्त होंगे तभी मानव जाति का वास्तविक कल्याण हो सकेगा। रूस के वैज्ञानिकों ने परीक्षण करके इस सत्य को स्वीकार किया है कि - गो घृत में विष के प्रभाव को दूर करने की अद्भुत क्षमता है। गो एक ऐसी मशीन है जो नाना प्रकार के तृण, घास, पल्लव खा कर उनका रासायनिक मिश्रण करा के, दूध जैसा अमृत पदार्थ देती है और उस दूध का सूक्ष्म रूप घृत के रूप में प्राप्त होता है, तभी वह सूक्ष्म रूप अणु की तरह शक्तिशाली बनकर सृष्टि के पदार्थों को शुद्ध करने की क्षमता रखता है इसीलिए यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में – 'यजमानस्य पशून् पाहि' कह कर इस यजमान अर्थात् यज्ञ को स्वीकार करने वाले व्यक्ति

को दुधारू पशु, जो दैवी यंत्र है, उन की रक्षा करने का आदेश दिया गया है। ईश्वर ने जगत् की रचना में चार प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की है। [1] मनुष्य [2] पशु-पक्षी [3] वृक्ष-वनस्पति [4] कीट-कृमि। इन चारों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। यज्ञ इन चारों को पवित्र व पुष्ट करने का कार्य करता है। गीता में कहा गया है–

यज्ञात् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः
अन्नाद् भवन्ति भूतानि यज्ञ कर्म समुद्भवः। 3/14

एवं प्रवर्तित चक्रं नानुवर्तयतीह यः
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थः स जीवति। 3/16

परमात्मा ने सृष्टि को एक चक्र में बाँधा है इस चक्र की धुरी यज्ञ है यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से प्राणियों की पुष्टि फिर उन प्राणियों से यज्ञ कर्म। इस चक्र को तोड़ना ईश्वराज्ञा का उल्लंघन करना है। सृष्टि के नियमों को भंग करने से प्रकृति में विषमता उत्पन्न होती है और विषमता से आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों प्रकार के तापों से समाज कराह उठता है। इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने, नित्य कर्म विधि नामक पुस्तिका विशेष रूप से लिखी और उसमें पंच महायज्ञों का विधान करते हुए अग्निहोत्र को नित्य करने के लिए अथर्व वेद के इन मंत्रों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया–

सायं सायं गृहपति र्नो प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता
वसोर्वसो वसुदान एधि वयं त्वेन्धाना स्तन्वं पुषेम।

प्रातः प्रातः गृहपति र्नो अग्नि सायं सायं सौमनसस्य दाता
वसोर्वसो वसुदान एधीन्धानास्त्वा शत हिमा ऋधेम।

अथर्व. का. 19 सू. 55 मं. 3-4

प्रतिदिन प्रातः किया हुआ यज्ञ सायं तक और सायंकाल किया हुआ यज्ञ प्रातःकाल तक वातावरण को पवित्र बनाकर हमें आरोग्य और आनन्द

का देने वाला होता है। इसी के माध्यम से हम धन और सुखों की प्राप्ति करते हुए स्वयं भी पुष्ट हों और दीर्घायु प्राप्त कर संसार को भी पुष्ट करें। पुराणों में वामन की कथा आती है कि विष्णु ने वामन का रूप धारण कर तीनों लोकों को हस्तगत कर लिया था। यह यज्ञ ही वह विष्णु है जो दिखने में छोटा दिखाई पड़ता है परन्तु इस का प्रभाव तीनों लोकों तक प्रसारित हो जाता है।

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के तीसरे मंत्र में यज्ञ को कामधुक् बतलाया है उसे सविता अर्थात् उत्पादक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह न केवल पवित्र कारक है अपितु सृष्टि में नाना प्रकार के अन्न फल फूलों का उत्पादन कर, कामनाओं को पूर्ण भी करता है।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्र धारं
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शत धारेण सुप्वा काम धुक्षः ।

नाना रूपों में पवित्र करने वाला यह यज्ञ-कर्म कामधुक् कामनाओं को तृप्त करने वाला है। इस शुद्धि कारक यज्ञ से नाना प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है। उसे जानकर हे देव परमात्मन् ! हम तुम्हारी दिव्यताओं को धारण एवं प्रकाशित करते हैं। इसीलिए कहा है–'स्वर्ग कामो यजेत् सुख काम इति शेषः'–स्वर्ग अर्थात् सुख की कामना करने वाले, नित्य यज्ञ किया करें। गीता में भी कहा गया है–

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् । अ. 3/10

प्रजापति ने सृष्टि के प्रारंभ में ही यज्ञ के अनुष्ठान का उपदेश किया है। इस यज्ञ को प्रसारित करो और इस यज्ञ को ही कामधेनु समझो।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है–'जनतायै यज्ञो भवतीति'–यज्ञ जनता के लिए ही होता है। 'संस्कृतं हवि होतव्यमिति' संस्कारित किए हुए द्रव्यों से ही यज्ञ करना चाहिए।

इस यज्ञ से पुष्टि, वर्धन, सुगंध प्रसार, नैरोग्य एवं पवित्रता सभी कार्य संपन्न होते हैं। इसी यज्ञ की प्रशंसा में प्रथम अध्याय का चतुर्थ मंत्र इस प्रकार है–

सा विश्वायु सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया
इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनात नच्मि विष्णो ह्यङ् रक्ष।

इस यज्ञ के हवि की रक्षा करो क्योंकि यह विष्णु अर्थात् जगत् का पालन करने वाली है। इस ऐश्वर्य शाली यज्ञ को सोम अर्थात् आनंद वर्धक पदार्थों से 'आतनच्मि'—दृढ़ करता हूँ। क्योंकि यह यज्ञ क्रिया विश्व की आयु बढ़ाने वाली, सब कर्म काण्डों को सिद्ध करने वाली और सब जगत् का धारण पोषण करने वाली है।

पाँचवे मंत्र में याज्ञिकों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि यज्ञ करने वाले विद्वानों का सर्वत्र सत्कार होता है और उन्हें हे हविष्कृत् यज्ञों के करने वाले 'एहि' आइए-आइए कह कर मनुष्य समाज में उन्हें सन्मानित किया जाता है–

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जन देववीतये
त्वा गृह्णामि बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यं, स इदं देवेभ्यो
हविः शमीष्व, सुशमि शमीष्व, हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि।

जब मनुष्य वेदादि शास्त्रों द्वारा यज्ञ की क्रिया और उसके फल को जान कर विशुद्ध हवि से यज्ञ करते हैं। तब वह सुगंधित द्रव्य, होम से परमाणु रूप होके, वायु और वृष्टि-जल में फैल कर, सब पदार्थों को उत्तम बना कर, दिव्य सुखों को सिद्ध करते हैं।

इसी प्रकार प्रथम अध्याय के इक्कीसवें मन्त्र में यज्ञ के इसी स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मंत्र कहता है–

देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनो बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्
सं वपामि समाप ओषधिभिः समोषधयो रसेन ।
सं रेवतीभिर्जगतिभिः पृच्यन्तां, सं मधुमती मधुमतिभिः पृच्यन्ताम् ।

हे मनुष्यो ! जैसे जल अपने रस से रोग नाशक और सुखदायक ओषधियों को बढ़ाता है । सूर्य रस का भेदन कर, पृथ्वी का आकर्षण करता है, वायु धारण करके पुष्ट करता है । इसी प्रकार तुम्हें भी ऐश्वर्य बढ़ाने के हेतु, पवित्र कारक इस यज्ञ के माध्यम से, वायु, वर्षा-जल एवं सूर्य की किरणों और औषधियों को पवित्र करने का कार्य नित्य करना चाहिए ।

इसी अध्याय के बाइसवें मंत्र में वेद की इस आज्ञा को हम इस रूप में पाते हैं—

जनयत्यै त्वा संयोमीदनग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषेत्वा घर्मोऽसि विश्वायु उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिङ्सी द्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ।

इस मंत्र के भावार्थ में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिए कि जिस से पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्नादि पदार्थ, रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो, उस को कभी नहीं छोड़ना चाहिए । क्योंकि उस के बिना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता । इसलिए ईश्वर ने उस यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ।

प्रथम अध्याय के लगभग सभी मंत्रों में यज्ञ के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए परमपिता परमात्मा ने सब मनुष्यों को नित्य यज्ञ करने का आदेश दिया है । विस्तार भय से कुछ चुने हुए मंत्रों के माध्यम से हम ने यज्ञ की कृति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

यज्ञ के साधन

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में यज्ञ के स्वरूप को स्पष्ट करने के उपरान्त द्वितीय अध्याय में यज्ञ के साधनों पर भी प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय के प्रथम मंत्र में यज्ञ वेदी वना कर यज्ञ कुण्ड को घृतादि से पूरित करने की बात उल्लिखित है--

कृष्णोऽस्या खरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
वेदिरसि वर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
वर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।

आखरेष्ठ—सब ओर से खुदे हुए वेदी स्थान में स्थित होकर

कृष्णः—अग्नि से सूक्ष्मरूप तथा वायु से आकर्षित

अग्नयेत्वा जुष्टं प्रोक्षामि—हवन करने के लिए अग्नि को प्रीतिपूर्वक शुद्ध घृतादि से सींचता हूँ। उस वेदिस्थ हवि को वर्हिषे-अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिए-जुष्टं प्रोक्षामि-प्रीति से बनाई वेदी को घृतादि से सींचता हूँ। उस शुद्ध की हुई हवि को स्रुग्भ्यः—हवि देने के साधन स्रुवाओं से सींचता हूँ। भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी रचा कर, पात्र आदि सामग्री को ग्रहण कर, अच्छी प्रकार शुद्ध की हुई इस हवि को, अग्नि में स्रुवा से होम करो। यह यज्ञ शुद्ध वर्षा जल से सब औषधियों को पुष्ट करता है। इस यज्ञ के द्वारा सब प्राणियों को सुखी करो।

इसी तरह आगे के मंत्र में यज्ञ में डाली जाने वाली सामग्री आदि को कूटने पीसने अथवा सूक्ष्म करने का उल्लेख पाया जाता है--

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽस्यूर्णं म्रदसं त्वा स्तृणामि
स्वासस्था देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये
स्वाहा। 2/2

ऊर्ण म्रदसं उलूखल कूटने के यंत्र आदि इस के साधक हैं। जिससे धान्यों के तुषों का मर्दन किया जाता है। नाना प्रकार के अन्न वनस्पतियों को ऊखल आदि के द्वारा मर्दन कर, इस वेदि में संसार के उपकार के लिए स्थापित करता हूँ। दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए यह वेदी सब पदार्थों को अपने में स्थित करने वाली है। इसलिए प्राणी मात्र की भलाई, संसार के पदार्थों की शुद्धि और उस परमपिता परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए इस में आहुति डालता हूँ।

यज्ञ में वेद मंत्रों के द्वारा आहुति देने का विधान करते हुए मंत्र कहता है—

गायत्रेण त्वा छन्दसा परि गृह्णामि, त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णमि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि सुक्ष्मा चासि सिवा चास्यूस्वती चासि पयस्वती। यजु. 1/27

यज्ञ के द्वारा यह पृथ्वी सुक्ष्मा-उत्तम,-शिवा-मंगल कारी, स्योना-सुखदायक सुषदा-निवास के योग्य, उर्जस्वती-अन्नवती, पयस्वती-रस भरे फलों से युक्त होती है। हे याज्ञिको ! तुम गायत्री, त्रिष्टुप् जगती आदि छन्दों से मण्डित वेद मन्त्रों से ही यज्ञ का अनुष्ठान किया करो।

इसी प्रकार यज्ञ में समिधादि साधनों का प्रयोग व उस के लाभ का निर्देश आगे के मंत्र में इस प्रकार है - अच्छी समिधाओं से युक्त इस यज्ञ में, जड़ और चेतन देवताओं की रक्षा व उन के उपकार के लिए, अग्नि में सुगंधित द्रव्यों का प्रक्षेप किया जाता है। वह सूर्य और वायु रूपी दो बाहुओं द्वारा पृथक् द्रव्य के रूप में कर, पुनः पृथिवी पर छोड़ा जाता है। जिससे पृथ्वी पर दिव्य औषधि आदि पदार्थ पुनः उत्पन्न होते हैं जिससे प्राणियों को नित्य सुख होता है।

नाना प्रकार के वृक्ष वनस्पति, इस यज्ञ के सहायक और वर्द्धक होते हैं। यह यज्ञ पुनः इन्हीं को पुष्ट करके इन की वृद्धि में सहायक होता है। इसीलिए वैदिक संस्कृति में पशुओं की रक्षा के साथ-साथ

वृक्षों की भी रक्षा का आदेश स्पष्ट रूप से मिलता है। हमारी संस्कृति का विकास वनों में हुआ। आर्य लोग वनों के महत्व को भली प्रकार जानते थे। आज जिस तरह निर्दयता से जंगल और पशु काटे जा रहे हैं वह मानवता के सर्वनाश का उपक्रम है। इसी का परिणाम नाना प्रकार के दैवी प्रकोपों के रूप में हम सब को भुगतना पड़ रहा है। जो वस्तुएँ यज्ञ का साधन हैं वे ही मानव जीवन को सुखी बनाने के साधन हैं यह बात हमारे ऋषि मुनियों को भली प्रकार विदित थी। वे सूक्ष्मदर्शी थे, इसीलिए इन की उन्नति में प्राणी मात्र की उन्नति और इनके विनाश में प्राणियों का विनाश मानते थे।

आगे यजुर्वेद का बड़ा ही प्यारा मंत्र है जिस में घृताहुति का स्पष्ट विधान किया गया है साथ ही उस आहुति के फलितार्थों को भी स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया गया है—

घृताच्यसि जुहुर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद
घृताच्यस्युप भृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद
घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद
प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य
योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम्।

यजु. 2/6

मंत्र का सार यह है - मुझ द्वारा घृत की आहुति से सींचा हुआ यह यज्ञ प्रिय कारक कर्म, सुखों को देने वाला, तृप्त करने वाला, औषधियों को प्राप्त कर, दुःखनाशक, प्रीतिकारक, आनन्द दायक है। मैं घृत की आहुतियों द्वारा दीर्घायु प्राप्त करूँ। हे प्रभो ! आप ही इस यज्ञ की और इस यज्ञ के करने कराने वाले की रक्षा कीजिए।

द्वितीय अध्याय के आठवें मंत्र में बतलाया गया है कि यज्ञ के लिए 'अस्कन्नमद्य देवेभ्यः आज्यं' स्थिर सुख की प्राप्ति के लिए घृतादि उत्तम पदार्थ प्राप्त करने चाहिए। ये घृतादि पदार्थ सूक्ष्म हो कर वायु

की सहायता से ऊपर मेघ मण्डल में स्थापित हो कर, फिर भूमि पर गिरते हैं। उससे भूमि में उत्पादिका शक्ति बढ़ती है। अतः उत्तम उत्तम पदार्थों से अग्नि में स्वाहाकार करना चाहिए।

आदि सृष्टि में स्वयं परमात्मा ज्ञानी ऋषियों के हृदयों में, इस यज्ञ विधि का प्रकाश करते हैं, जिससे यज्ञ परंपरागत रूप से, मानवों में प्रचलित होता है इस बात का स्पष्ट संकेत प्रस्तुत मंत्र में पाया जाता है—

एवं ते देव सवित र्यज्ञं प्राहु बृहस्पतये ब्रह्मणे
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मासव। 2/12

ऋषियों के हृदय में प्रकाशित व ऋषियों द्वारा प्रचारित इस यज्ञ विद्या और विधि को जानकर, हम इसका अनुष्ठान सर्वदा किया करें। क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के बिना, किसी को भी सुख और रक्षा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए सब लोग प्रीति पूर्वक, इस यज्ञ की रक्षा और वृद्धि प्रयत्न पूर्वक सदा किया करें।

द्वितीय अध्याय के तेरहवें मंत्र में कहा गया है कि आज्य अर्थात् आह्वनीय पदार्थों के द्वारा 'यज्ञमिमं तनोतु' इस यज्ञ का विस्तार करो। यह यज्ञ कैसा है? 'अरिष्टं' अहिंसक इस यज्ञ को 'संदधातु' सम्यक् प्रकार से धारण करो। 'मनो जूति जुषताम्' इस चंचल मन को अच्छे अच्छे कार्यों में सयुक्त करो। मैं इस संसार में सुख प्राप्ति के लिए यज्ञ के अनुष्ठान की आज्ञा देता हूँ। इस यज्ञ का अनुष्ठान कर स्वयं सुखी रहो, दूसरों को भी सुखी करो।

यह घृताहुति किस प्रकार तीनों लोकों का भ्रमण करती है, इसे स्पष्ट करते हुए इसी अध्याय के बाईसवें मंत्र में कहा गया है—

सं बर्हिरक्तायङ् हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा।

शुद्ध किया हुआ घृत, जो यज्ञाग्नि में डाला जाता है वह आकाश में वायु, जल और सूर्य किरणों के साथ रहकर, इधर-उधर जा कर, आकाश के सब पदार्थों को, दिव्य गुणों से युक्त बनाकर प्रजा को सुखी करता है। इसलिए सब मनुष्य उत्तम सामग्री एवं श्रेष्ठ साधनों से यज्ञ का नित्य अनुष्ठान किया करें।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने वेद मन्त्रों से ही यज्ञ अनुष्ठान करने की आवश्यकता पर इसीलिए बल दिया है कि इन मन्त्रों में यज्ञ का क्रिया विधान और फल सम्यक् तया प्रदर्शित है। हम लोग इन वेद मंत्रों का मनन कर इस क्रिया के फल को जानेंगे तभी श्रद्धा पूर्वक इस महान् यज्ञ को अंगीकार कर सकेंगे। परन्तु दुःख है कि मुख से वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भी, हम इन के अर्थों पर चिन्तन व मनन नहीं करते, जिससे यज्ञ के प्रति न तो सच्ची श्रद्धा जागृत होती है न ही उसके फल को हम अंगीकार कर पाते हैं। आइए अब यजुर्वेद के तृतीय अध्याय में वर्णित अग्निहोत्र के उन मंत्रों पर विचार करें, जिनका अग्निहोत्र करते समय हम सर्वदा पाठ करते हैं इन मंत्रों में स्पष्ट रूप से, विविध गुण युक्त चार प्रकार के सुगंधित, पुष्टि कारक, रोगनाशक मिष्ट-आदि द्रव्यों से होम करने का विधान किया गया है—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् आस्मिन् हव्या जुहोतन 13/11

हे मनुष्यों ! तुम लोग वायु, औषधि, वर्षा जल की शुद्धि के लिए तथा सब के उपकार के लिए घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् सम्यक् जलने योग्य सुगंधित आम्र, पीपल, पलाश व चन्दन आदि काष्ठों से, अतिथि रूप अग्नि को, नित्य प्रकाशमान् करो फिर—आस्मिन् हव्या जुहोतन - उसमें होम करने योग्य पुष्ट मधुर सुगंधित हवि — अर्थात् घृत, शर्करा, गुड़, केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक सोमलता

आदि चार प्रकार के द्रव्यों से, नित्य अग्निहोत्र करके, सब का उपकार करो।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रंजुहोतन अग्नये जातवेदसे। 3/2

हे मनुष्यों ! तुम 'सुसमिद्धाय'-अच्छे प्रकार प्रदीप्त, शोचिषे-शुद्ध, दोषों का निवारण करने वाले, 'जातवेदसे' उत्पन्न मात्र पदार्थ में विद्यमान 'अग्नये' रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में 'तीव्रं' तीक्ष्ण स्वभाव वाले 'घृतं' घृतादि का 'जुहोतन' होम करो।

तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि वृहच्छोचा यविष्ठय 3/3

'अंगिरा' सुख देने वाले, 'यविष्ठं' अत्यन्त युवा, पदार्थों को पृथक् करने में बलवान् 'बृहत्' महान् है। 'शोच' जो प्रकाश करता है, उस भौतिक अग्नि को, 'समिद्भिः' समिधा आदि से 'घृतेन' घृत के द्वारा, 'वर्धयामसि' प्रदीप्त करते हैं, बढ़ाते हैं।

उपत्वाग्ने हविष्मतीं घृताचीर्यन्तु हर्यते, जुषस्व समिधो मम। 3/4-

'हर्यत' सुख प्रापक अग्नि 'मम' मुझ कार्य कर्ता को जो 'समिद्धः जुषस्व' समिधादि सामग्री का कर्ता है—'त्वा' उस अग्नि को ये समिधायें 'उपयन्तु' प्राप्त करें। 'हविष्मन्ती घृताची' हवि वाली, घृत को प्राप्त कराने वाली समिधाओं को, यज्ञ में चिनो।

घृत, समिधा, औषधि आदि सुगंध कारक आरोग्य वर्धक, पवित्र कारक, दुर्गन्ध नाशक वस्तुओं को, जो यज्ञ के साधन हैं, निर्दिष्ट कर आगे के मंत्र में परमात्मा ने यज्ञ में पुष्टि कारक अन्न की आहुति का भी विधान किया है। यज्ञ के माध्यम से तैंतीस प्रकार के जड़ चेतन देवताओं के सहयोग से प्राप्त अन्न को पुनः उन्हीं देवताओं के लिए समर्पित करने का विधान है। इससे कृतज्ञता के साथ साथ पुष्टि, वर्धन, आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है।

इसी पुनीत क्रिया का भ्रष्ट रूप मध्य काल में अभक्ष्य पदार्थों की आहुति के रूप में प्रस्फुटित हुआ। जिस के कारण यज्ञ की मूल भावना ही नष्ट हो गई और शनैः शनैः सर्वोपकारक यज्ञ जिसे 'अध्वर' अहिंसक क्रिया के नाम से पुकारा जाता था हिंसक हो उठा और हिंसक यज्ञ की प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन मतों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने इन हिंसक यज्ञों का घोर विरोध किया। लोभ के वशीभूत माँसादि द्रव्यों को खाने की इच्छा से ब्राह्मणों ने इन अभक्ष्य पदार्थों को भी यज्ञ में डाल कर, अपने पाप को पुण्य में बदलने का उपक्रम किया। साथ ही साथ यज्ञ के शुद्ध स्वरूप को नष्ट कर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की मन घडंत उक्तियों के द्वारा हिंसा की भावना को प्रोत्साहित किया। किन्तु उन्होंने यह भुला दिया कि यज्ञ एक पवित्र एवं सर्वथा अहिंसक, श्रेष्ठतम कार्य है।

आज भी कई लोग कूड़ा कर्कट आदि को नष्ट करने के लिए उसे जला देते हैं पर वे जानते नहीं कि अग्नि में जलाने से पदार्थ नष्ट नहीं होता अपितु सूक्ष्म होकर सम्पूर्ण वायु मण्डल में प्रसारित हो जाता है। दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को जलाने से वातावरण दूषित हो उठता है। ऐसे पदार्थों को भूमि में गढ़ा खोदकर डाल देना चाहिए जिससे मिट्टी के माध्यम से उनका रूपान्तर हो जाता है और वे खाद के रूप में पुनः उपयोगी बन जाते हैं। यही कारण है कि मरणोपरान्त मानव देह को भी जलाते समय घृत चन्दनादि सुगंधित पदार्थों के साथ जलाने का शास्त्रीय विधान है कि जिससे न तो वातावरण प्रदूषित हो, न ही माँस आदि पदार्थों की दूषित खाद का कृषि में उपयोग हो सके। सुगंधित द्रव्यों के बिना, जो मृत देह को अग्नि में जलाते हैं वे वातावरण को दूषित कर महापाप के भागी होते हैं।

प्रायः भारत वर्ष के अन्ध विश्वासी जन, मानव शरीर के दहन किए हुए अवशेषों को उत्तम, स्वास्थ्य वर्द्धक, पवित्र जल से युक्त नदियों

में डालकर मोक्ष प्राप्ति की कामना करते हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि नदी के उत्तम जल को अस्थि या भस्म द्वारा दूषित करना मानव समाज के लिए कितना हानिकारक है। भला हानिप्रद क्रियाओं को करके मोक्ष या सुख प्राप्ति की कामना करना घोर अज्ञान नहीं तो और क्या है? जबकि इन अस्थिमय अवशेष को खेतों में डालने का शास्त्रीय विधान है।

यूँ तो जल, अग्नि, वायु, और मिट्टी ये सब पदार्थ वस्तुओं को पवित्र करने हारे होते हैं, पर इन सब की रीति अलग है। अतः इस विद्या को जानकर पृथक्-पृथक् रूप से इनके द्वारा उपकार लेना योग्य है। जल में किस पदार्थ को, अग्नि में किस पदार्थ को, वायु और मिट्टी में कहाँ-कहाँ किस पदार्थ को डालना चाहिए यह पदार्थ-विद्या है। हमारे पूर्वजों ने इसका सम्यक् अनुशीलन कर ज्ञान-विज्ञान द्वारा इनके माध्यम से पवित्रता के भिन्न-भिन्न उपाय बताये थे। परन्तु दुर्भाग्य है मानव समाज का कि अपने अज्ञान वश इन्हीं पदार्थों को दूषित कर वह अपने लिए सर्वनाश के साधन जुटा रहा है परिणामतः नाना प्रकार के रोगों में ग्रसित होकर आज मानवता चीत्कार कर रही है।

एक दूसरी दूषित परंपरा हमारे समाज में प्रचलित हो गई है। सुगंध का प्रसार करने वाले पुष्पों को तोड़कर मूर्ति पर चढ़ाना अथवा किसी का सत्कार करना भी उस पुष्प से होने वाले दीर्घ लाभ से जगत् को वञ्चित करना है। इतना ही नहीं ये पुष्प बाद में ढेरों के रूप में सड़कर और अधिक दुर्गन्ध फैलाने लगते हैं, जिससे वातावरण दूषित हो उठता है। यज्ञ के द्वारा स्वयं दुर्गन्ध का नाश न कर पुष्पों के माध्यम से प्रकृति द्वारा चल रहे यज्ञ का ध्वंस करना पाप नहीं तो क्या है? आइए वेद ज्ञान के प्रकाश में, मानव जाति के महान् उपकारक यज्ञ के सच्चे स्वरूप को जन-जन में प्रचारित कर, परोपकार के भागी बनें।

यज्ञ के प्रारंभ में ही पढ़े जाने वाले यजुर्वेद अ. 3 मं. 5 पर कुछ विचार करें –

भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनिपृष्ठेऽग्नि मन्नादमन्नाद्यायादधे।

इस मंत्र में याज्ञिक, घोषणा करता है कि भूलोक, अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक अर्थात् तीनों लोकों को पवित्र करने के उद्देश्य से मैं देवयजनि-देवताओं द्वारा पवित्र करने योग्य पृथ्वी की पीठ पर इस पवित्र यज्ञाग्नि को धरता हूँ। क्योंकि मुझे 'द्यौरिव' द्युलोक के समान इस धरती को भी प्रकाश से भरपूर 'वरिम्णा' श्रेष्ठ वरणीय गुणों से युक्त बनाना है। इसीलिए इस भूमि और द्युलोक दोनों के परस्पर सहयोग से प्राप्त, उत्तमोत्तम अन्नों को मैं इस अग्नि की भेंट करता हूँ जिससे कई गुना अधिक अन्न, पत्र, पुष्प, फल, वनस्पति औषधादि को हम प्राप्त कर सकें।

दैनिक यज्ञ की जिन आहुतियों का विधान महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी लघु पुस्तिका नित्यकर्म विधि में किया है, वे मंत्र यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के नवें व दसवें मंत्र में इस रूप में वर्णित हैं –

अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्योज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्योवर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा।
ज्योति सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा। 3/9
सजुर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा। /3/10

इन मंत्रों का अर्थ 'पंच महायज्ञ विधि' के अनुसार निम्न प्रकार है – अग्नि जो परमेश्वर ज्योति स्वरूप है, उस की आज्ञा से, हम परोपकार के लिए यज्ञ करते हैं। उसका रचा हुआ जो भौतिक अग्नि है, उसमें द्रव्य इसीलिए डालते हैं कि वह अग्नि द्रव्यों के परमाणु छिन्न भिन्न

करके, जल वायु एवं वृष्टि को शुद्ध कर दें। जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो। अग्नि जो परमेश्वर, वर्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वाला, तथा अग्नि, आरोग्य और वृद्धि का बढ़ाने का हेतु है। इसलिए हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। जो सूर्यादि लोकों का प्रकाशक, उसकी प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं। जो सूर्य परमेश्वर, सब विद्याओं को देकर, हमसे प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह के लिए हम होम करते हैं। जो सब संसार का ईश्वर है, उसकी प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं।

जो परमेश्वर प्राण आदि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सब के अंग-अंग में व्याप्त है, वह अग्नि परमेश्वर हम को प्राप्त हो। जिसके लिए हम होम करते हैं। जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक, वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सब अंग अंग में व्याप्त है। वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हो, इसके अर्थ हम होम करते हैं।

द्युलोक में सूर्य जो कार्य करता है, पृथ्वीलोक में वही कार्य हम यज्ञ के माध्यम से करते हैं। इस यज्ञ की महिमा वेद मंत्रों में नाना रूपों में गाई गई है। जब हम चमचों में भर भर कर आहुति यज्ञ के लिए समर्पित करते हैं तो वह आहुति बदले में बहुत सा सुख लेकर लौटती है। इस बात को बड़े ही सुन्दर रूप में, वेद मंत्र में प्रस्तुत किया गया है। वेद कहता है यह एक ऐसा सुखों का सौदा है, जो करता है सो पाता है—

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत
वस्नेव विक्रीणावहा इष मूर्जं शतक्रतो। 3/49

दर्वी कहते हैं बड़े चमच को। घृत से परिपूर्ण चमच होम में गिरता है, वह चारों ओर से सुख से भरपूर होकर लौटता है। जैसे बनिया लोग

रुपया आदि देकर नाना द्रव्यों को खरीदते और बेचते हैं, वैसे ही अग्नि में द्रव्य देकर यजमान वर्षा, सुख आदि को खरीदता है। वर्षा से औषधि आदि ग्रहण करके फिर उसी बर्षा के लिए बेच देता है अर्थात् अग्नि में होम कर देता है।

यज्ञ की सफलता में विद्वानों का भी योगदान महत्वपूर्ण होता है, इसी भावना को चौथे अध्याय के 5 वें मंत्र में इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

आ वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे
आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे।

हे यज्ञ को संपन्न कराने वाले विद्वानों ! हम तुम से यज्ञ को सिद्ध करने वाली इच्छाओं को प्राप्त करते हैं। हमारा यह अध्वर अर्थात् अहिंसक यज्ञ, अनेक दिव्यताओं को प्राप्त करावेगा।

यज्ञ का प्रधान साधन घृत है। घृत की प्राप्ति पशुओं से होती है अतः यज्ञ कर्ता को पशुओं की रक्षा व पालन का आदेश दिया गया है। समिधा वृक्षों से प्राप्त होती है और यज्ञ से वृक्ष फलते फूलते हैं अतः वनों की रक्षा भी आवश्यक है। प्रस्तुत मंत्र में पशुओं की रक्षा का स्पष्ट आदेश है –

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाम् रेवति यजमाने प्रियं धा आविश
उरोरन्तरिक्षा त्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्व तन्वाभव
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिंधाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। 6/11

अठारवें अध्याय के 63 वें मंत्र में यज्ञ के बाह्य साधन एक स्थान पर ही गिनाए गये हैं—

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या बर्हिषा
ऋचेम यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे।

प्रस्तरेण परिधिना, यज्ञ के चारों ओर आसन डालने का विधान। स्रुचा-चमच 'वेद्या' यज्ञवेदी 'ऋचेम' वेद मंत्रों के द्वारा 'स्वर्देवेषु गन्तवे' दिव्य पदार्थों में पहुँचाने के लिए स्व:, सांसारिक सुख 'यज्ञम्' इस अग्निहोत्र के द्वारा प्राप्त करें।

यज्ञ में विद्वानों को दक्षिणा देने का उल्लेख भी 18 वें अध्याय के 64 वें मंत्र में मिलता है –

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणा।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्।

यज्ञ की पूर्ण सामग्री से अग्निहोत्र करें और दक्षिणादि से विद्वानों का उचित सत्कार किया करें।

सुगंधित और मिष्ट पदार्थों की धारा से जो यज्ञ पूर्ण होता है वह सब सुखों को प्राप्त कराता है –

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्। 18/65

इस प्रकार यज्ञ के सब साधनों पर विचार करने के पश्चात् अब हम इस यज्ञ के फल को जानने का प्रयत्न करेंगे।

यज्ञ का फल

यज्ञ की महिमा का वर्णन वेदों में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरा हुआ है। मनुष्य का जीवन ज्ञान, कर्म, उपासना के त्रिवृत से आवृत्त है। हमारा ज्ञान यदि आचरण में नहीं है तो उसका फल शून्य है। ज्ञान पूर्वक किया हुआ प्रत्येक कर्म सुखदाई होता है। इसी तरह यज्ञ की क्रियाओं को सम्यक्तया जान कर, उस का अनुष्ठान करने से वाञ्छित सुख प्राप्त होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के अंतिम मंत्र में इस यज्ञ के फल का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। इस मंत्र

के अर्थ में महर्षि लिखते हैं – परमेश्वर इस मंत्र के द्वारा यज्ञ विद्या के फल को जनाता है – तुम लोगों से विधि पूर्वक किया हुआ यज्ञ सूर्य की किरणों से विहार करता है। वह अपने सतत् पवित्रता गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है। सूर्य की किरणों द्वारा सब पदार्थों को तेजस्वी, शुद्ध, अमृत, रस से युक्त, सुखकारक, प्रसन्नता का हेतु, दृढ़ एवं यज्ञ के योग्य बनाता है। जिससे उनके भोजन, आच्छादन से हम लोग शरीर पुष्टि, बुद्धिबल आदि और शुद्ध गुणों को सिद्ध करके नित्य सुखी रहें।

द्वितीय अध्याय के आठवें मंत्र में बताया गया है कि इस यज्ञ से अन्न और जल शुद्ध एवं अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। यज्ञ के द्वारा जो वृष्टि होती है उससे भूमि में महान् उत्पादिका शक्ति उत्पन्न होती है।

द्वितीय अध्याय के दसवें मंत्र में यज्ञ के फल को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है – यज्ञ से ईश्वर, स्वच्छ मन, विद्या, सुवर्ण, चक्रवर्ती राज्य, आदि धन प्रदान करता है। यज्ञ से परोपकारी धार्मिक जनों की कामनायें पूर्ण होती हैं। यज्ञ से ईश्वर सभी इष्ट सुख प्रदान करता है।

इसी प्रकार अध्याय 2 मंत्र 25 में कहा गया है कि यज्ञ से शुद्ध किए वायु, जल, औषधि और अन्न से, आरोग्य, बुद्धि और शारीरिक बल बढ़ा कर महान् सुख को प्राप्त करें।

चतुर्थ अध्याय के सातवें मंत्र का अर्थ लिखते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं – यज्ञ के अनुष्ठान के बिना उत्साह, वुद्धि, सत्य वाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान, और विद्या की पुष्टि संभव नहीं है। इसलिए मनुष्यों को यज्ञ का अनुष्ठान करके, सब के लिए सब प्रकार का आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय का अन्तिम मंत्र इस प्रकार है –

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ।   4/37

इस मंत्र के द्वारा प्रभु आदेश देते हैं कि यज्ञ सन्तान और धन के द्वारा घर को बढ़ाने वाला, दुःखों से पार करने वाला, श्रेष्ठ वीरों का निर्माण करने वाला है अतः इस यज्ञ का स्वयं अनुष्ठान करो और – दुर्यान् प्रचर – घर घर में इसका प्रचार करो ।

पांचवें अध्याय के अट्ठाइसवें मंत्र में यज्ञ को दुःखों से बचाने वाले आश्रय स्थल के रूप में प्रस्तुत किया गया है –

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्
घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्व जनस्य छाया ।

जो यजमान दम्पत्ति, यज्ञ के अनुष्ठान में दृढ़ रहते हैं और घृतादि पदार्थों से आकाश और भूमि को प्रपूरित करते रहते हैं उन्हें राज्य सन्तान पशु अर्थात् संसार के सब सुख प्राप्त होते हैं और दुःखों का नाश होकर परमैश्वर्य की प्राप्ति होती है। संसार उन्हें दुःखों से बचने के लिए अपना आश्रय स्थल स्वीकार करता है ।

इस तरह यजुर्वेद में ऐसे बहुत से मंत्र हैं जिन में यज्ञ की महिमा व गौरव का वर्णन पाया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि यज्ञ के प्रेमी जन, क्रिया विधान को भली प्रकार समझें और सम्यक्तया यज्ञ का अनुष्ठान कर स्वयं लाभान्वित हों एवं अन्यों को प्रेरणा दे इस महान् पुण्य कार्य का प्रचार कर दूसरों को भी दुःख सागर से उबारने का प्रयत्न करें ।

यज्ञ के प्रकार

वैदिक काल में आर्य लोग यज्ञ की महिमा का अनुशीलन कर घर घर में यज्ञ का दैनिक अनुष्ठान किया करते थे। साथ ही सार्वजनिक

रूप से बड़े बड़े यज्ञ भी चिरकाल तक भारत में संपन्न होते रहे। आगे चल कर ब्राह्मण ग्रंथ, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रों में, यज्ञ के विधि विधान को विस्तृत रूप से कर्मकाण्ड में आवद्ध किया गया। यज्ञों के प्रकारों का इन्हीं ग्रंथों में सम्यक्तया विवेचन किया गया है। बीज रूप में अथर्व वेद में भी कुछ यज्ञों का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है—

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः
अर्काश्वमेधा वुच्छिष्टे जीव बर्हि मंदिन्तमः। 11/7/7

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट् कारो व्रतं तपः
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः। 11/7/9

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्ट यः। 11/7/19

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अश्वमेध, अग्निहोत्र, अग्न्याधान और चातुर्मास्य आदि का नाम इन मंत्रों में पाया जाता है। इस वेद का गोपथ ब्राह्मण है जिसमें इन यज्ञों का क्रम इस प्रकार है। अग्न्याधान, पूर्णाहुति, अग्निहोत्र, दशपूर्ण मास, नवसस्येष्टि, चातुर्मास्य, पशुबंध, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध। दक्षिणावाले, बहुत दक्षिणावाले, असंख्य दक्षिणावाले यज्ञों का वर्णन भी पाया जाता है।

यज्ञ के लिए अग्नि का आधान कर पूर्णाहुति तक समाप्त कर दे वह अग्न्याधान और पूर्णाहुति यज्ञ है।

अग्निहोत्र – नित्य प्रति प्रातः सायं किये जाने वाले दैनिक यज्ञ का नाम है।

दर्शपूर्णमास—अमावस्या और पूर्णिमा के दिन किया जाने वाला यज्ञ दर्शपूर्णमास कहाता है।

चातुर्मास्य—वर्षा ऋतु में किया जाने वाला विशेष यज्ञ।

नवसस्येष्टि – नई फसल के आने पर किसानों द्वारा किया जाने वाला यज्ञ।

अग्निष्टोम—वार्षिक यज्ञ। वसन्त के प्रारंभ में किया जाता है।

राजसूय—राजतिलक का यज्ञ।

अश्वमेध—राष्ट्रं वै अश्वमेधः—राज्य के विस्तार के लिए राष्ट्र की एकता को, सीमाओं को सुदृढ़ करने के लिए यह यज्ञ किया जाता था।

गोमेध—पृथ्वी को उर्वरा बनाना, नये-नये प्रदेशों की खोज करना, पशुओं की वृद्धि के अर्थ किया जाने वाला यज्ञ।

इसके अतिरिक्त पुत्रेष्टि यज्ञ या विशेष रूप से वर्षा के लिए किए जाने वाले वर्षेष्टि यज्ञ आदि का समय समय पर अनुष्ठान किया जाता था। तात्पर्य यह कि जिस किसी विशेष इच्छा से पूरित जो यज्ञ होता था, उसके साधन पृथक् पृथक् होते थे। इन्हीं सब बातों का सूक्ष्म विवेचन बाद के ग्रन्थों में विस्तार से होता गया।

कुछ यज्ञ वैयक्तिक, कुछ सामाजिक, कुछ संस्कार विशेषों के निमित्त, कुछ राज्य और कृषि विस्तार से सम्बन्धित नाना प्रकार के यज्ञों का आयोजन भारतवर्ष में किया जाता रहा है।

यज्ञों की ऐतिहासिक परंपरा

वैदिक संस्कृति की दीर्घकालीन ऐतिहासिक श्रृंखला में यज्ञों का उल्लेख सर्वत्र पाया जाता है। जनक ने अवर्षण दूर कराने के लिए यज्ञ किया था। राजा जनक के युग के याज्ञिक विद्वान् का नाम ही याज्ञवल्क था जो यज्ञविद्या और ब्रह्मविद्या में निष्णात थे। इसी तरह राजा अश्वपति की यह घोषणा भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय घर घर में अग्नि होत्र होता था।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः
नानाहिताग्निर्नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।

इसमें स्पष्ट रूप में अश्वपति कहते हैं कि मेरे राज्य में न तो कोई चोर है न कंजूस है न शराबी है। साथ ही ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं है जो अग्निहोत्र न करता हो। आर्यों के विवाह आदि संस्कार यज्ञाग्नि को ही साक्षी रखकर सम्पन्न होते थे। रामायण जो हमारी संस्कृति का प्राचीन ग्रंथ माना जाता है, वह तो यज्ञ के वर्णन से भरा पड़ा है। दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ के द्वारा राम की तरह आदर्श सन्तान प्राप्त की थी। राम और लक्ष्मण, विश्वामित्र कृत यज्ञ की रक्षा के लिए ही वन में गए थे। वाल्मिकी रामायण में वर्णन आता है कि जब राम, वन गमन की आज्ञा प्राप्त करने के लिए कौशल्या के पास गए थे तब वे अग्निहोत्र कर रहीं थीं। राम की कथा का अन्त भी अश्वमेध यज्ञ से ही होता है। यज्ञ हमारी संस्कृति की आत्मा है। राम के सुखी राज्य का यही रहस्य था।

जिस राम राज्य की कल्पना गाँधीजी ने की थी उस के साकार न होने का कारण यही था कि उस संस्कृति को अपनाने का उपक्रम नहीं किया गया। महर्षि दयानन्द ने इस रहस्य को समझा था तभी वे अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में लिख गए—जब तक आर्यावर्त में यज्ञों का प्रचार था, देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था अब भी वैसा हो जाय तो देश सुख समृद्धि से भरपूर हो जाय।

महाभारत यद्यपि देश के पतन का काल था परन्तु उस में भी राजसूय यज्ञ का वर्णन पाया जाता है। मैक्समूलर ने अपने 'फिजिकेल रिलिजन' नामक पुस्तक में इस सत्य को स्वीकार किया है कि संसार में जितने भी मत हैं उन सब में यज्ञ का कोई न कोई रूप प्रचलित है। प्राचीन समय में ग्रीकों और रोम निवासियों के यहाँ भी यज्ञ प्रचलित थे। अमेरिका के पास खुदाई में यज्ञ कुण्ड के आकार के पात्र उपलब्ध

हुए हैं। आज भी विकृत रूप में ही सही वैदिकों के यहाँ यज्ञ सम्पन्न होते हैं। पारसियों की अग्नि पूजा भी प्रसिद्ध है। जैनियों में भी धूप, दीप यज्ञ का ही अवशिष्ट रूप है। प्राचीन काल में यज्ञ शाला को देवालय के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि यहाँ देव यज्ञ सम्पन्न होते थे। उसी के अवशिष्ट रूप में आज भी देवालयों में घृत दीप, अगरबत्ती आदि का प्रावधान पाया जाता है। हमारी अपनी विनम्र सम्मति में यज्ञ कुण्डों के विविध रूपों से ही आज की मूर्ति कला का विकास हुआ है। यज्ञ मण्डप को सजाने के लिए फूलों का प्रयोग होता था अतः मूर्तियों पर फूल चढ़ाने की प्रथा प्रारंभ हुई। यज्ञाग्नि में मिष्ठान्न फल आदि आहुत किए जाते थे इसी के अवशिष्ट रूप में मूर्तियों पर भोग चढ़ाने की प्रथा प्रचलित है। ब्राह्मणों का नारियल से सत्कार किया जाता था अब मूर्ति के सन्मुख नारियल फोड़ा जाता है। मध्य युग में विदेशियों के आक्रमण के फलस्वरूप यज्ञ सम्पन्न होना कठिन हो गया था। ज्ञान विज्ञान के ह्रास के कारण ब्राह्मणों ने यज्ञ को संक्षिप्त कर उसके विकृत रूप को मन्दिरों में प्रतिस्थापित कर दिया। यज्ञ कुण्ड मूर्तियों में बदल गए। उन्हीं के सम्मुख वेद मंत्रों का उच्चार होने लगा। अग्नि के माध्यम से जड़ देवताओं का सत्कार होता था। उस असली क्रिया को भूल गये और केवल जड़ मूर्ति की पूजा करने लगे। फलतः आर्य जाति अग्नि विहीन होकर निस्तेज, निर्वीर्य और दरिद्र होती चली जा रही है।

यहूदी ईसाई और मुस्लिम तीन विदेशी मत हैं। उन में से यहूदियों के यहाँ यज्ञ होते थे, वे कुण्ड को कैर कहते थे। ईसाईयों में कैण्डिल [जो कुण्ड से मिलता जुलता शब्द है] जलाने की प्रथा यज्ञ का ही अपभ्रंश है। मुस्लिमों में भी लोबान उदबत्ती आदि जलाने का नाम मात्र का प्रयोग अब भी चलता है। भले ही उनके रूप बिगड़ गये हैं पर ये सब यज्ञ के ही अवशिष्ट रूप हैं इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। चीन वाले यज्ञ को घोम कहते हैं जो होम का ही अपभ्रंश है।

आर्यों के व्यावहारिक ज्ञान विज्ञान का केन्द्र यज्ञ

यज्ञ के माध्यम से भौतिक शास्त्र [Physics] रसायन शास्त्र [Chemistry] औषधविद्या [Medical Seience] खगोल शास्त्र [Astronomy] आदि का विकास प्राचीन काल में हुआ था।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड में निरन्तर यज्ञ चल रहा है वेद में इस ब्रह्माण्ड यज्ञ का वर्णन इस रूप में किया गया है—

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिसप्त समिधः कृतः
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम्। यजु 31/15

इस यज्ञ की सात परिधियाँ हैं, उसमें इक्कीस समिधायें हैं ऐसे यज्ञ को देवताओं ने फैला रखा है, जिसमें पुरुष रूपी पशु आबद्ध है।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं, ग्रीष्म इध्म शरद्धविः। यजु 31/14

उस परम पुरुष के द्वारा, देवताओं के माध्यम से जो यज्ञ का विस्तार किया गया है उसमें वसन्त आज्य अर्थात् सुगंधित सामग्री के रूप में, ग्रीष्म ईंधन के रूप में और शरद् ऋतु हवि अर्थात् घृत के रूप में अपना योगदान करता है। जिस प्रकार गर्मी, सर्दी, हवा, प्रकाश आदि के द्वारा ब्रह्माण्ड सदैव हमारी सब की पूजा संगति और दान किया करता है। इसी तरह हमारा शरीर भी सर्दी गर्मी प्रकाश आदि से संगति करता है। इस पिण्ड और ब्रह्माण्ड में सामञ्जस्य उत्पन्न कर देना ही यज्ञ का प्रधान कार्य है।

इसी यज्ञ के माध्यम से प्राचीन काल में लोग बहुव्यापी संक्रामक रोगों का भी उपशमन किया करते थे। अमूल्य जड़ी बूटियों के माध्यम से, ऋतुओं की सन्धि पर जिन यज्ञों का विधान था उससे ऋतुजन्य व्याधियों से दूर करने का लाभ होता था। आजकल

भी कई डाक्टर यह स्वीकार करने लगे हैं कि आग में डालकर, नीम के पत्ते व कई विशेष द्रव्यों को जलाना, अनेक रोगों को दूर करने में लाभदायक है। प्राचीन मान्यताओं को स्वीकार करने वाले बहुत से परिवारों में आज भी प्रसूति गृह को कीटाणु नाशक व रोग रहित रखने के लिए नाना प्रकार की औषधियों को अग्नि में डाल कर धुँआ करने की प्रथा प्रचलित है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में इंजेक्षन द्वारा मानव देह में, औषधि को सीधे रक्त में प्रवाहित कर उसके तुरंत प्रभाव को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार प्राचीन काल में यज्ञ के माध्यम से अग्नि में औषधियों को जलाकर उस के धूम से श्वास के द्वारा रोग को नष्ट किया जाता था। क्योंकि फेफड़ों में गया हुआ वायु शीघ्र रक्त को प्रभावित करता है। यज्ञ स्थल आर्यों की एक प्रयोग शाला का भी स्थल होता था जिसमें नाना प्रकार के द्रव्यों को जला कर उसके प्रभावों का परिणाम जाना जाता था।

ज्योतिष् का प्रादुर्भाव भी यज्ञों का समय देखनेके निमित्त से हुआ था। ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा जाता है इसी के माध्यम से यज्ञ के लिए उपयुक्त समय का विधान किया जाता था। यज्ञ प्रायः संधियों में होते हैं। प्रातः सायं की संधि, पक्ष एवं मास तथा ऋृतु की सन्धियाँ यज्ञ के लिए निश्चित की जाती थीं। सन्धियाँ ही पर्व कहलाती हैं। पर्व का अर्थ भी गाँठ या जोड़ होता है। नया अन्न आने पर तथा नई फसल पकने पर, हमारे पूवंज बड़े-बड़े यज्ञ रचाया करते थे। इसी का विगड़ा हुआ रूप होली और दीपावली के रूप में आज भी प्रचलित है। वर्ष के प्रारंभ का ज्ञान ज्योतिष् से ही होता है। नक्षत्र, राशि, सूर्य का पथ, इन सभी का ज्ञान ज्योतिष् शास्त्र पर आधारित है।

इसी तरह यज्ञ कुंड बनाने में रेखा गणित, अंक गणितआदि की सहायता अपेक्षित है क्योंकि यज्ञ कुण्ड गोलाकार, त्रिकोण, चतुष्कोण, बाजपक्षी अथवा श्येन पक्षी के आकार के होते थे। 'इमा मे अग्न इष्टिका' इस मंत्र

में इकाई से लेकर परार्ध तक की संख्या बताई गई है। इंटें यज्ञ में नपी तुली होती थीं। कितने बड़े यज्ञ कुण्ड के लिए कितनी इंटों की आवश्यकता होती है इन सब का हिसाब रखा जाता था। यज्ञ सामग्री के लिए भी नाप तौल परिमाण मात्रा आदि निश्चित करने में गणित सहायक सिद्ध होता था। आहुतियों की संख्या भी निश्चित करने के लिए तथा यज्ञ के साधन जुटाने के लिए भी गणित का ज्ञान आवश्यक था।

यज्ञ देश का विस्तृत वर्णन शास्त्रों में पाया जाता है। प्रयाग का नाम प्रयाग इसीलिए पड़ा है कि वहाँ समय-समय पर प्रकृष्ट रूप में याग रचाए जाते थे। इस तरह नए-नए स्थानों का अन्वेषण कर याज्ञिक लोग भूगोल का ज्ञान भी बढ़ाते थे।

यज्ञशालायें बनाने के लिए वास्तु शास्त्र की आवश्यकता पड़ती थी। यज्ञ के लिए पात्र आदि बनाने कुम्हार, बढ़ई आदि का सहयोग आवश्यक था। अतः शिल्प कला का विकास भी यज्ञ के माध्यम से हुआ। यज्ञ मण्डप, यज्ञ पात्र आदि को विविध सौन्दर्य युक्त बनाने के लिए चित्रकला का आश्रय लेना पड़ता था और यज्ञ में संगीत, वाद्य आदि सभी का प्रयोग होता था। अतः नाना प्रकार की कलाओं का विस्तार करने का श्रेय भी यज्ञ को ही है।

यज्ञ सामग्री तैयार करने में कूटना पीसना छानना आदि कई प्रक्रियाओं को सिद्ध किया जाता था अतः उद्योग धन्धे भी इसी के सहारे विकसित हुए। विशिष्ट आहुतियों के लिए विशिष्ट पकवान बनाने की आवश्यकता होती थी। अतः पाक शास्त्र का विकास करने में भी यज्ञ सहायक सिद्ध हुआ।

इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि यज्ञ मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के विकास का केन्द्र बिन्दु है।

को अस्य वेद भुवनस्य नाभि:
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या, पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभि:
इयं वेदि परो अन्त: पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि: । 23/61

पृथिवी का अन्त और भुवन का मध्य कहाँ है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि यह यज्ञ कुण्ड ही भुवन की नाभि है और यह यज्ञवेदी ही पृथिवी का अन्त है। प्रश्नोत्तर में पृथ्वी और ब्रह्माण्ड की गोलाई का भी वर्णन कर दिया गया है। क्योंकि गोल चीज का केन्द्र उसके प्रत्येक स्थान में हो सकता है। भुवन गोल है अत: जहाँ यज्ञ हो रहा हो वहीं इसका मध्य माना जा सकता है और पृथ्वी गोल है अत: यज्ञवेदी ही उसका अन्त है।

यज्ञों के द्वारा ही प्राचीन काल में आर्यों ने पदार्थ विज्ञान [साइन्स] का विकास किया था। यज्ञ का सम्बन्ध जलवायु से होने के कारण इन का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया जाता था क्योंकि वर्षा वायुचक्र, सर्दी, गर्मी, ग्रह, उपग्रह, पृथ्वी का चालों पर निर्भर है अत: सभी तत्वों का सूक्ष्म ज्ञान याज्ञिक लोग प्राप्त कर इच्छानुसार वृष्टि आदि कराया करते थे। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों प्रकार की वायु का ज्ञान उन्हें आवश्यक था। इसी तरह पानी के सूक्ष्म भेदों व तत्वों का ज्ञान भी याज्ञिकों को प्राप्त करना होता था। अग्नि की व्यापकता को जानकर ही अग्नि को दूत कहा गया था 'अग्निदूतं वृणीमहे' –

इसी प्रकार यज्ञ के समय दुधारू पशुओं को यज्ञ स्थल के निकट ही बाँध दिया जाता था उन स्तंभों को यूप के नाम से उल्लिखित किया गया है। पशुओं के द्वारा याज्ञिकों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप जब चाहे दूध प्राप्त हो जाता था। दान देने के लिए भी पशुओं की आवश्यकता होती थी। राजा जनक द्वारा एक सहस्त्र स्वर्ण मण्डित गौओं के दान का उल्लेख पाया जाता है। उस युग में पशु ही द्रव्य-विनिमय के साधन थे। पशुपालन और कृषि का विकास भी यज्ञ के द्वारा

ही हुआ करता था । पशुओं के योग्य भूमि पशुओं के लिए और मनुष्य के योग्य भूमि मनुष्यों के लिए उपलब्ध कराई जाती थी । पशुओं के लिए बड़े बड़े चरागाह छोड़ दिए जाते थे । जिसे 'पशुचर' कहा जाता था । अंग्रेजी का पाश्चर शब्द इसी का अपभ्रंश है । गौ आदि पशु और भूमि का सुनियोजन ही गोमेध यज्ञ कहाता था और अश्वमेध यज्ञ के अन्दर सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य की कल्पना निहित थी ।

इस प्रकार हमारी वैदिक संस्कृति का विकास यज्ञ के ही माध्यम से हुआ है । इसी यज्ञ के द्वारा ही हम जीवन के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सम्यक्तया सिद्ध कर सकते हैं ।

निबन्ध का उपसंहार करते हुए वेद की विशिष्ट आज्ञा की ओर हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं । यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय का तेईसवाँ मंत्र इस प्रकार है —

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति
कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति
पोषाय रक्षसां भागोऽसि ।

इस मंत्र में प्रश्न किया गया है — कि कौन मनुष्य इस सुख कारक यज्ञ को छोड़ देता है ? उत्तर में कहा गया है कि — जो इस यज्ञ कर्म को छोड़ देता है । उसको वह यज्ञ स्वरूप परमेश्वर भी त्याग देता है । यज्ञ करने वाला मनुष्य किस प्रयोजन के लिए यज्ञ में आहुति छोड़ता है ? उत्तर - जिससे सब सुखों की प्राप्ति एव जिससे सब प्राणियों का पोषण होता है । किन्तु जो पदार्थ सबके उपकारक यज्ञ में प्रयुक्त नहीं हो सकता वह दुष्ट जनों से उपभोग करने योग्य होता है अर्थात् यज्ञशेष पदार्थों का उपभोग करने वाले देवता और बिना यज्ञ किए पदार्थों का उपभोग करने वाले राक्षस कहाते हैं । गीता में भी इसी बात की पुष्टि की गई है —

यज्ञ शिष्टा शिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात् । 3/13

यज्ञ शेष को खाने वाले व्यक्ति सब प्रकार के पापों से दूर होते हैं और जो केवल अपने ही भोग के लिए भोज्य पदार्थों को पकाते हैं वे मानों पाप का ही आहार कर रहे हैं।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञ भाविताः
तैर्दत्तान प्रदायेभ्यो, यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः। 3/12

यज्ञ के द्वारा ब्रह्माण्ड के सब देवताओं को तृप्त करने से हम कृतघ्नता के पाप से बचते हैं और इष्ट सुखों को प्राप्त करते हैं पर जो यज्ञ के द्वारा देवताओं के भाग को अर्पण नहीं करते, वे मानो चोर हैं, जो दूसरों का भाग भी स्वय हो भोग रहे हैं।

यज्ञशिष्टाऽमृत भुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम्
नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। 4/13

यज्ञ शेष को खाने वाले मानो अमृत का भोग कर रहे होते हैं ऐसे व्यक्ति ही ब्रह्म को प्राप्त कर पाते हैं। यज्ञ विहीन व्यक्ति इस लोक में ही सुख को प्राप्त नहीं कर सकते, तो फिर परलोक के सुखों को क्या प्राप्त कर सकेंगे ?

गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माननेवाले तथाकथित धर्माभिमानी व्यक्ति भी यदि उसके उपदेशों पर आचरण न करेंगे तो इस जाति का उद्धार कैसे हो सकेगा ? आवश्यकता है कि वैदिक धर्म के अनुयायी प्राचीन ऋषिमुनियों की शिक्षाओं पर आचरण करें तभी हम अपनी संस्कृति की सुरक्षा कर सकेंगे। यज्ञ भावना ही विश्व में शान्ति का एक मात्र उपाय है। यज्ञ क्रिया ही ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड में शान्ति की स्थापना की जा सकती है। यज्ञ की भावना हम में दिव्यत्व जगाती है और अयाज्ञिक भावना ही आसुरी वृत्ति की जन्मदात्री है। यज्ञ के माध्यम से त्रिलोकी और पंचभूतों में शान्ति उद्बुद्ध होती है। पृथ्वी से लेकर द्युलोक तक को यज्ञ समान

रूप से प्रभावित करता है। यही कारण है कि याज्ञिक अपने यज्ञ को सम्पन्न करके उसके फल के रूप में प्रभु से प्रार्थना करता है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षङ् शान्तिः पृथिवी शान्ति राप शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्ति रेधि।

अग्नि में छोड़ी हुई घृताहुति अत्यन्त सूक्ष्म होकर द्युलोक में पहुँच जाती है वहाँ से अन्तरिक्ष में मेघ के रूप में स्थित होकर वृष्टि द्वारा भूलोक पर फैल जाती है और जल के रूप में पृथ्वी पर शान्ति की धारायें प्रवाहित होने लगती हैं। इस वृष्टि जल से सिंचित वृक्ष वनस्पति, अन्न, सब शुद्ध, पवित्र, सात्विक गुण वाले हो जाते हैं जिसे खाकर मनुष्य समाज शान्ति और तृप्ति का अनुभव करता है। धन धान्य की वृद्धि से दरिद्रता नष्ट होती है। मानव समाज में सुख शान्ति की वृद्धि होती है। इस प्रकार शान्ति पाठ के शब्दों का क्रम भी ठीक, यज्ञ से होने वाले क्रमिक फल के सर्वथा अनुरूप रखा गया है। इस शान्ति पाठ को पढ़ने का अधिकारी याज्ञिक ही है, जो कर्म करके फल की कामना करता है। बिना कर्म किए प्रार्थना अधूरी रह जाती है। अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यज्ञ ही एक मात्र ऐसा व्यावहारिक कर्म है जिसके माध्यम से समस्त विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

सौभाग्य से इस युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ के वैदिक पुनीत स्वरूप की पुनः प्रतिष्ठापना की है। हम सब का कर्तव्य है कि हम यज्ञ करने का दृढ संकल्प करें और इस परोपकारक सुख वर्द्धक यज्ञ का घर-घर में प्रचार करें। तभी हम सब का कल्याण होगा।

'धियो यो नः प्रचोदयात्'

योरोपीय साइंस की नकल करके उस को बदनाम करने वाले कुछ देशी विद्वान् कहा करते हैं कि हवन से कार्बन अर्थात् ऐसी वायु उत्पन्न होती है, जो मनुष्य के लिए हानिकारक है। हम कहते हैं कि यज्ञों के जितने गुण है, उन को देखते हुए हवन के धुएँ से उत्पन्न होने वाली हानियाँ कुछ मूल्य नहीं रखतीं। विशेषकर ऐसे समय में जब कि रेल के ऐंजिन, मिलों को चिमनियाँ और सिगरेट के धुएँ रात दिन लोगों का स्वास्थ्य नष्ट कर रहे हैं। इसलिए हम मुनासिब समझते हैं कि यहाँ पर यह दिखलाने का यत्न करें कि बाज समय धुंआ भी लाभदायक होता है और बगैर धुएँ के भी वायु हानिकारक होती है।

धुएँ के लाभ दिखाते हुए फ्रांस के विज्ञान वेत्ता अध्यापक ट्रिलवर्ट कहते हैं कि जलती हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति है। उन्होंने इस के प्रयोग भी दिखलाये हैं। वे कहते हैं कि इस से क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियाँ तुरन्त नष्ट हो जाती हैं[1]। इसी तरह डॉ. एम. ट्रेल्ट ने मुनक्का, किशमिश आदि फलों को [जिन में शक्कर अधिक होती है] जला कर देखा है। उनको मालूम हुआ है कि इनके धुएँ से टाइफाइड के रोग कीट तीस मिनट में और दूसरे रोगों के कीट घण्टे दो घण्टे में नष्ट हो जाते हैं।[2] मद्रास के सेनिटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आई. एम. एस. ने कालेज के विद्यार्थियों को उपदेश किया है कि - घी और चावल में केसर मिला कर जलाने से रोग जन्तुओं का नाश हो जाता हैं। फ्रांस का डाक्टर हैफिकिन कहता है कि - घी के जलाने से रोगकीट मर जाते हैं।[3] इन प्रमाणों से पाया जाता है

---

1. सरस्वती अक्टूबर सध् 1919
2. भारत सुदशा प्रवर्तक जून सन् 1903
3. 'न्यूवोनिक' पायोनियर प्रेस प्रयाग

कि विचार पूर्वक स्थिर किए हुए रोगनाशक पदार्थों के धुएँ से लाभ ही होता है।

परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि वायु से केवल कार्बन निकाल डालने पर ही उसकी शुद्धि होती है। वायु में बिना कारबन के भी बहुत से मारने वाले तत्व उपस्थित हो जाते हैं। डॉ. जे. लैन नाटर ने 'हाइजिन' नामक पुस्तक में लिखा है कि जिन कोठरियों में बहुत से आदमी हों आर खिड़कियाँ खुली न हों, वहाँ की वायु दोष युक्त होती है। वहाँ कारबोनिक ऐसिड गैस अधिक परिमाण में होती है। वहाँ शिर घूमने लगता है और मूर्च्छा भी हो जाती है परन्तु इसका कारण गर्मी या कार्बनडाइ आक्साइड की उत्पत्ति ही नहीं है प्रत्युत् वायु के अन्दर ऑक्सिजन का कम हो जाना है। क्योंकि मनुष्यों अथवा पशुओं के वे मलिन पदार्थ जो उनके श्वास और त्वचा से निकलते हैं वायु में भर जाते हैं और वे जहर का काम करते हैं। इस का तजुरबा इस तरह किया गया है कि हवा से कारबन डाइ आक्साइड निकाल दिया गया और मनुष्यों के श्वास से उत्पन्न हुई वायु रहने दी गई। उस वायु में जब चूहा रखा गया तो वह पैंतालीस मिनट में मर गया। इससे सिद्ध है कि मैली हवा कारबनडाइ से भी अधिक जहरीली होती है। कहने का मतलब यह है कि हवा केवल कारबन ही के निकाल देने से शुद्ध नहीं हो सकती। उससे तो दूषित मलिनता के निकालने की आवश्यकता है। हवन में यह गुण है कि वह दूषित मलिनता को जला देता है परन्तु थोड़ा सा कारबन रहने देता है। क्योंकि हवन में मिला हुआ कारबन वृक्षों को खुराक है। हवन से जहाँ वायु शुद्ध होती है वहाँ हवन से वृक्षों को खुराक भी मिलती है। हवन जब सघन वृक्षावली में होता है तब वहाँ की वायु शुद्ध हो जाता है और वन वृक्षों को कार्बन की खुराक भी मिल जाती है इस तरह हवन सार्थक हो जाता है और उसमें कारबन फैलाने का का दोष नहीं रहता। यज्ञ की सामग्री, घी, दूध आदि पशुओं से और ओषधियाँ जंगल से प्राप्त हैं। पशु भी

जंगल ही में चरते हैं इसलिए यज्ञ का समस्त कार्य जंगल से चलता है यज्ञ का ही नहीं समस्त प्राणिमात्र का जीवन जंगल पर वनस्पति पर ही अवलंबित है। इसलिए यज्ञ के मुख्य उद्देश्य में वनस्पति को लाभ पहुँचाना भी है। वनस्पति को पानी और कारबन वायु की आवश्यकता होती है। वृक्ष कारबन वायु को खाते और वृष्टि के जल को पीते हैं। हम देखते हैं कि यज्ञ अपने धूम से कारबन और वृष्टि की रचना एक ही साथ करते हैं और ये दोनों पदार्थ वृक्षों के खाने और पीने के काम आते हैं।

विज्ञान ने यह बात सिद्ध कर दी है कि वायु में जो Dust-धूल उड़ा करती है, वही आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाकर पानी बनाने के लिए जामन का काम करती है। सभी को मालूम है कि यज्ञों का उद्देश्य पानी बरसाना भी है अतः हवा का कारबोनिक गैस जो वृक्षों के खाने से बच जाता है और धूल के रूप में रह जाता है, उसे बरसात का पानी नीचे खींच लाता है और वह भी वृक्षों के लिए खाद बन जाता है। इस तरह से कारबन पानी बरसाने और वृक्षों की खुराक बनाने में सहायता करता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह कारबन युक्त वायु, मनुष्यों के लिए हानिकारक है ? हम कहते हैं कि नहीं। क्योंकि यह भी सिद्धान्त है कि वृक्ष कारबोनिक गैस को खाते हैं और ऑक्सीजन प्राणवायु को देते है। इसी प्रकार से वैदिक यज्ञदेश में वैदिक यज्ञों द्वारा उत्पन्न वायु उसी प्रकार तत्क्षण ही लाभ दायक हो जाती है जिस तरह हमारे श्वास प्राणप्रद वायु लेते हैं और जहरीली वायु देते हैं। इसके विरुद्ध वृक्ष प्राणप्रद वायु देते हैं और जहरीली वायु लेते हैं इसलिए यज्ञों पर कारबन फैलाने का अभियोग नहीं लग सकता। – वैदिक सम्पत्ति

प्रश्न – होम एक छोटी सी कृति है इससे ब्रह्माण्ड का वायु कैसे शुद्ध होगा ? समुद्र में एक चम्मच भर कस्तूरी डालने से क्या सारा समुद्र सुगंधित और शुद्ध होगा ?

उत्तर – सौ घड़े रायते में थोड़ी सी हींग के बघार से सुगन्ध और रुचि आ जाती है यह प्रत्यक्ष है। इसकी जैसी उपपत्ति समझी जाती है तद्वत् ही यह प्रकार भी है।

प्रश्न – होम तो यहाँ करो और अमेरीका में उसका परिणाम कैसे होगा ?

उत्तर—वायु द्वारा शुद्धि सर्वत्र फैले, यह वायु का धर्म है। इसके सिवाय यदि सब लोग अपने-अपने घर में आर्य सम्मत रीति से हवन करें तो यह शंका ही नहीं सभव होती। पहले आर्य लोगों का ऐसा सामाजिक नियम था कि – प्रत्येक पुरुष प्रातःकाल स्नान कर सोलह आहुति देता था। क्योंकि प्रातःकाल में जो मल मूत्रादिकों से दुर्गन्धि उत्पन्न होती थी, वह इस प्रातःकाल के हवन से दूर होती थी। इसी तरह सायंकाल में हवन करने से दिन भर की जमी हुई जो दुर्गन्धि, उसका नाश होकर, रात भर वायु निर्मल और शुद्ध चलता थी। प्राचीन आर्य लोग बड़े ही बुद्धिमान् थे, इसमें किंचित् सन्देह नहीं है। फिर अमावस्या और पूर्णिमा को पूरे भरत खण्ड में होम होता था। उससे भरत खण्ड में वायु शुद्धि के कितने साधन उत्पन्न होते थे। इस पर विचार करने से, यह छोटा ही सा प्रकार है, ऐसा किसी को भी प्रतीत न होगा। अब वायु शुद्ध रहने से वृष्टि का जल भी शुद्ध रहता है। वृष्टि और वायु का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और सब देश का का जल वृष्टि से उत्पन्न होता है।

प्रश्न—हवन से परमेश्वर की सेवा और स्वर्ग की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर - सेवा का अर्थ प्रियाचरण है। परमेश्वर की सेवा अर्थात् उसको जो प्रिय है, वह आचरण करने से, वह न्यायकारी होने के कारण उसके द्वारा योग्य प्रत्युपकार होता है ऐसा एक नियम ही है। स्वर्ग अर्थात् सुखविशेष अथवा विद्या, नरक अर्थात् दुःख विशेष अथवा

अविद्या। विद्या स्वर्ग प्राप्ति का तथा बुद्धि वर्धन का कारण है। बुद्धि वर्धन को शारीरिक दृढ़ता अवश्य चाहिए और शुद्ध वायु, शुद्ध जल शुद्ध अन्न के बिना शरीर को दृढ़ता कैसे प्राप्त होगी? होम हवन से वायु शुद्ध होकर सुवृष्टि होती है। उससे शरीर निरोग और बुद्धि विशद होती है, विद्या प्राप्त होती है अर्थात् स्वर्ग प्राप्ति, सुख प्राप्ति होती है।

प्रश्न—होम करने में अमुक ही रीति की ईंट रख कर अमुक ही प्रकार की वेदी बनावें ऐसी विशेष योजना किसलिए चाहिए?

उत्तर—विशेष योजना के अनुकूल कोई भी बात किए बिना, उससे विशेष कार्य नियमित समय पर प्राप्त नहीं होता। इसी तरह कच्ची ईंटों की चार अंगुल गहरी और सोलह अंगुल ऊँची गणित प्रमाण से वेदी बनाकर, उन में नियमित प्रमाण का मसाला लेकर प्रमाण से घृतादिक का हवन करने से, अल्प व्यय में अतिशय ऊष्णता उत्पन्न होती है और ऊष्णता के कारण वायु शुद्ध होकर, परमाणु वायु में उड़ जाते हैं और इस ऊष्णता के कारण वायु का घर्षण होकर विद्युत्-उत्पन्न होती और मेघ मण्डल में गड़गड़ाहट की आवाज उत्पन्न होती है। इस प्रकार हवन की विशेष योजना के कारण, विशेष ऊष्णता उत्पन्न होकर विशेष वृष्टि उत्पन्न होती है।

प्रश्न—होम करते समय वेद मंत्रों के पढ़ने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—दो काम यदि एक ही समय में हो सकते हों तो उन्हें करना चाहिए, ऐसा उद्देश्य कर प्राचीन आर्य लोगों ने जब हाथों को होमादिक द्रव्यों की व्यवस्था में लगाया, तब मुँह खाली न रहे और परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना मुँह से होती रहे। इसलिए पहले के ऋषि लोग वेद मंत्र बोलते थे। इसके लिए ब्राह्मण लोगों ने वेद कण्ठस्थ आज तक किया, इसीलिए वेद विद्या भी अब लौं बनी रही है। फिर यह भी

था कि वेद पाठ करने से परमेश्वर की भक्ति होती थी, जिससे विचार शक्ति भी उत्पन्न होती थी। मंत्रों में होम के लाभ भी कहे गये हैं।

– महर्षि दयानन्द पूना प्रवचन

प्रश्न—होम से क्या उपकार होता है ?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्ध युक्त वायु और जल से रोग रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु, जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न—चन्दनादि घिस के किसी को लगाये या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट कर देना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो ! जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्धि की निवृत्ति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगंधित पुष्प और अतर आदि के घर मे रखने से सुगंधित वायु होके सुख कारक होगा ?

उत्तर—उस सुगंध का यह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

प्रश्न—क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ?
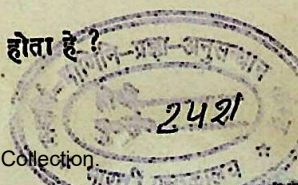
उत्तर—हाँ ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को विगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। आत्मा के बल की उन्नति हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिए परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है ?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुति और छः छः माशे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो उससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।

इसीलिए आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुत सा होम करते कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

— सत्यार्थ प्रकाश

- तीर्थ नाम उनका है कि जिनसे जीव दुःख रूप समुद्र को तर के सुख को प्राप्त हों अर्थात् जो - जो वेदादि शास्त्र प्रतिपादित तीर्थ हैं तथा जिनका आर्यों ने अनुष्ठान किया है। जो कि जीवों को दुःखों से छुड़ा के उनके सुखों का साधन हैं उन्हीं को तीर्थ कहते हैं।
- अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त किसी यज्ञ की समाप्ति करके जो स्नान किया जाता है उसको तीर्थ कहते हैं। क्योंकि उस कर्म से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब मनुष्यों को सुख प्राप्त होता है। इस कारण उन कर्मों के करने वाले मनुष्यों को भी सुख और शुद्धि प्राप्त होती है तथा सब मनुष्यों को इस तीर्थ का सेवन करना उचित है। अपने मन से वैर भाव को छोड़ के सब के कल्याण करने में प्रवृत्त होना और किसी संसारी व्यवहार के वर्तावों में दुःख न देना।
- वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम भी तीर्थ है जिनके पढ़ने और पढ़ाने तथा उनमें कहे हुए मार्गों में चलने से मनुष्य लोग दुःख सागर को तर के सुखों को प्राप्त होते हैं।
- वेदादि शास्त्रों को पढाने वाला जो आचार्य है उसका तथा माता पिता और अतिथि का नाम भी तीर्थ है क्योंकि उनकी सेवा करने से जीवात्मा शुद्ध होकर दुःखों से पार हो जाता है।
- उक्त तीर्थों से प्राप्त होने वाला परमेश्वर भी तीर्थ ही है। उस तीर्थ को हमारा नमस्कार है। क्योंकि उसी प्रभु की कृपा और प्राप्ति से जीव सब दुःखों से तर जाते हैं।
- जल और स्थान विशेष तीर्थ नहीं क्योंकि उनमें तारने का सामर्थ्य नहीं। जो जल में हाथ वा पग न चलावें वा नौका आदि पर न बैठें तो कभी तर नहीं सकते। इस युक्ति से काशी, प्रयाग, गंगा, यमुना आदि तीर्थ सिद्ध नहीं हो सकते। हम लोग उनको नदी मानते हैं और उनके जल में जो जो गुण हैं उनको भी मानते हैं परन्तु पाप - छुड़ाना और दुःखों से तारना [illegible]

शशिकान्त आर्य
प्रकाशक
क्रान्तिदूत प्रकाशन

प्राप्ति स्थान
अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान
4-5-753 ज्ञान गंगा
सुलतान बाजार
हैदराबाद – 27

फोन 41112

प्रथम संस्करण 1979

दो रुपया मात्र –
2/–

मुद्रक
किरण प्रिण्टर्स